International Journal of Sanskrit Research 2015; 1(3): 60-62

International Journal of Sanskrit Research

अनन्ता

ISSN: 2394-7519
IJSR 2015; 1(3): 60-62
© 2015 IJSR
www.anantaajournal.com
Received: 19-01-2015
Accepted: 22-02-2015

राजीव मिश्र
शोधच्छात्र, संस्कृत विभाग,
इलाहाबाद विश्वविद्यालय,
इलाहाबाद, उत्तर प्रदेश, भारत

Correspondence
राजीव मिश्र
शोधच्छात्र, संस्कृत विभाग,
इलाहाबाद विश्वविद्यालय,
इलाहाबाद, उत्तर प्रदेश, भारत

साहित्यसुधासिन्धुकार विश्वनाथदेव सम्मत काव्यस्वरूपः एक विवेचन

राजीव मिश्र

प्रस्तावना

आचार्य भरतमुनि से लेकर पण्डितराज जगन्नाथ पर्यन्त लगभग दो हजार वर्षों से अधिक अवधि की संस्कृतकाव्यशास्त्रीय परम्परा समुपलब्ध होती है। इस परम्परा ने अनेक ऐसे मनीषियों को प्रदान किया जिनके कर्तृत्व ने अलङ्कारशास्त्र के उद्भव एवं विकास में अतुलनीय योगदान दिया, जिसके कारण इन आचार्यों को प्रभूत ख्याति प्राप्त हुई। इस परम्परा में कुछ ऐसे आचार्य भी हैं, जिन्होंने संस्कृतकाव्यशास्त्र के क्षेत्र में महत्वपूर्ण योगदान तो दिया, किन्तु किसी कारणवश उनको अपेक्षित ख्याति नहीं मिल पायी। ऐसे ही मनीषियों में से एक दाक्षिणात्य आचार्य विश्वनाथदेव भी हैं, जिनकी प्रमुख कृति साहित्यसुधासिन्धु है। साहित्यसुधासिन्धु न केवल ध्वनि सम्प्रदाय का एक महत्वपूर्ण ग्रन्थ है अपितु काव्यप्रकाश एवं रसगङ्गाधर जैसे गम्भीर ग्रन्थों के प्रतिपाद्य के समुन्मीलन हेतु एक अद्वितीय सहायक सामग्री भी है।

साहित्यसुधासिन्धुकार विश्वनाथदेव का जन्म दक्षिण भारत की गोदावरी नदी–तट पर स्थित धारासुर नामक नगर में हुआ था। इनके पितामह अनन्तदेव तथा पिता त्रिमलदेव थे। जो कालान्तर में धारासुर से आकर वाराणसी में बस गये थे।

आस्ते धारासुराख्यं नगरमतिलशत्केशवोद्दामधाम,
प्रभ्राजत कीर्तिपूरं विलसति सविधे यस्य गोदावरी सा।
तत्रत्योऽनन्तदेवात्मज इह वसति मुक्तिपुर्यां सर्वयाम्,
तस्याङ्गजस्योल्लसति कृतिरियं विश्वनाथाभिधस्य।। [1]

विश्वनाथदेव का जन्म सन् 1552 ई0 से सन् 1972 ई0 के मध्य निश्चित होता है जिसके आधार पर इनका स्थितिकाल सोलहवीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध एवं सत्रहवीं शताब्दी का पूर्वार्द्ध माना जा सकता है।[2] इस बात से यह तथ्य भी स्पष्ट हो जाती है कि पण्डित जगन्नाथ विश्वनाथदेव से कुछ न कुछ उत्तरवर्ती अवश्य ही रहे होंगे। इन्होंने अपनी तीन रचनाओं का उल्लेख किया है, जिनमें से दो रचनाएँ– 'साहित्यसुधासिन्धु' एवं नाटिका 'मृगाङ्कलेखा' उपलब्ध एवं प्रकाशित हो चुकी है, जबकि तीसरी रचना 'चित्रमीमांसा' सम्प्रति अनुपलब्ध है।

साहित्यसुधासिन्धु विश्वनादेवकृत काव्यशास्त्रीय एक संग्रह ग्रन्थ है, जिसमें आठ तरङ्गों (अध्यायों) के अन्तर्गत 290 कारिकाओं एवं उनकी वृत्तियों तथा लगभग 460 उदाहरणों के माध्यम से साहित्यशास्त्र के प्रायः सभी विषयों का विशद् विवेचन एवं उनकी सूक्ष्म समीक्षा का निदर्शन होता है। इस ग्रन्थ का सम्पादन डॉ0 रामप्रताप ने भारतीय विद्याप्रकाशन दिल्ली–वाराणसी से किया है। वर्तमान समय में साहित्यसुधासिन्धु की तीन पाण्डुलिपियाँ उपलब्ध हैं जिन्हें उनके प्राप्ति स्थान के आधार पर 'जम्मू की पाण्डुलिपि', 'अलवर की पाण्डुलिपि' तथा 'तिरुपति की पाण्डुलिपि' के अभिधान से अभिहित किया जाता है।

विश्वनाथदेव अभिमत काव्यस्वरूप पर विचार करने से पूर्व काव्य के सामान्य स्वरूप तथा कुछ प्रमुख आचार्यों की इस सन्दर्भ में मान्यता का उल्लेख करना समीचीन होगा। कवि का कर्म काव्य कहा जाता है– कवयतीति कविः, तस्य कर्म काव्यम्। आचार्य मम्मट ने भी लोकोत्तर वर्णन में निपुण कविकर्म को काव्य पदवाच्य स्वीकार किया है–लोकोत्तरवर्णनानिपुणकविकर्म काव्यम्। [4] काव्य के वास्तविक लक्षण का निरूपण सर्वप्रथम आचार्य भामह ने किया था– शब्दार्थौ सहितौ काव्यम्। [5] भामह के अतिरिक्त उनके उत्तरवर्ती प्रायः सभी आचार्यों ने अपने–अपने ग्रन्थों में काव्यलक्षण का निर्धारण किया है। किन्तु भोजराज ने काव्य के विषय में एक नवीन दृष्टि को जन्म दिया तथा दोषहीन, गुणसमन्वित अलङ्कारों से विभूषित तथा रसान्वित कविव्यापार को काव्य माना।

बाद में 11वीं शताब्दी के वाग्देवतावतार आचार्य मम्मट ने भोज के काव्यलक्षण को अपने काव्यलक्षण का आधार बनाते हुए समन्वयवादी दृष्टिकोण का परिचय दिया। मम्मट दोष रहित, गुणों से युक्त तथा यथासंभव अलङ्कारों से अलङ्कृत शब्दार्थ को काव्य माना है – तददोषौ शब्दार्थौ सगुणावनलङ्कृती पुनः क्वापि। [6]

काव्य लक्षण के सन्दर्भ में 14वीं शताब्दी के रसवादी आचार्य विश्वनाथ कविराज का महत्वपूर्ण योगदान है। इन्होंने अपने पूर्ववर्ती मम्मट, आनंदवर्धन, कुन्तक, प्रभृति आचार्यों के लक्षणों का खण्डन करके स्वाभिमत काव्य लक्षण प्रस्तुत करते हुए रसात्मक वाक्य को काव्य प्रतिपादित किया है– वाक्यं रसात्मकं, काव्यम्।[7] 17वीं शताब्दी ई0 के मूर्धन्य आचार्य पण्डितराज जगन्नाथ ने अलङ्कारशास्त्र के चरम चूड़ान्तभूत ग्रन्थराट् 'रसगंगाधर' का प्रणयन कर अलंकारशास्त्र के अनेक मौलिक सिद्धान्तो की उद्भावना की। पण्डितराज ने ऐसे शब्द को काव्य स्वीकार किया है, जो रमणीयार्थ का प्रतिपादक हो– रमणीयार्थप्रतिपादकः शब्दः काव्यम्। [8] अपने काव्य लक्षण का प्रथम परिष्कार करते हुए पण्डितराज लिखते हैं कि – ''लोकोत्तर आनंद की उत्पादिका भावना (ज्ञानधारा) का विषय जो अर्थ है उस अर्थ का प्रतिपादक शब्द काव्य होता है और उसमें रहने वाला शब्दत्व ही काव्यत्व है। [9] काव्य लक्षण का द्वितीय परिष्कार करते हुए पण्डितराज ने लिखा कि 'शून्यं वासगृहं' इत्यादि काव्य वाक्य तथा 'घटः' इत्यादि उदासीन शब्दों से प्रतिपादित अर्थ विषयक भावना के एक होने पर भी काव्य–शब्द प्रतिपादितार्थ–विषयक भावनात्व एवं घटः इत्यादि उदासीन शब्द प्रतिपादितार्थ–विषयक भावनात्व एक नहीं भिन्न हैं। इस स्थिति में चमत्कारजनतता का अवछेदक काव्य शब्द से प्रतिपादित अर्थविषयक भावनात्व ही हो सकता है अन्य नहीं। [10] अन्त में तृतीय परिष्कार करते हुए उन्होंने लिखा है कि– वस्तुतः काव्य का लक्षण 'चमत्कारत्ववत्व' मात्र हुआ– स्वविशिष्टजनकताऽवच्छेकार्थप्रतिपादकतासंसर्गेण चमत्कारत्ववत्वमेव वा काव्यत्वमितिफलितम्। [11]

साहित्यसुधासिन्धुकार का काव्य–स्वरूप विवेचनः आचार्य विश्वनाथदेव (16वीं शताब्दी ई0) ने साहित्यसुधासिन्धु के प्रथम तरंग में काव्य लक्षण की परम्परा को आगे बढ़ाते हुए विलक्षण शैली में काव्य–स्वरूप निर्धारित किया है। इन्होंने प्रथमतः अत्यन्त सरल शब्दों एवं शैली में लिखा है कि ''जिसके सुनने मात्र से ही ब्रह्मानन्द सहोदर रस या अलौकिक आनन्द की उत्पत्ति होती है, वह वाक्य काव्य कहलाता है–

जायते परमानन्दो ब्रह्मानन्दसहोदरः।
यस्य श्रवणमात्रेण तद् वाक्यं काव्यमुच्यते।। [12]

काव्य–स्वरूप की समीक्षा करते हुए विश्वनाथदेव ने सर्वप्रथम शब्दार्थ को काव्य मानने वाले आचार्यों के मतों[13] का उल्लेख करते हुए व्यावहारिक उदाहरणों के माध्यम से शब्दकाव्यतावाद का समर्थन किया है।[14] तदनन्तर मम्मट एवं उनके समर्थक आचार्यों के काव्यलक्षण को एक श्लोक के माध्यम से उल्लिखित करते हुए लिखा है कि मम्मटादि कुछ विद्वान् दोषरहित अलंकारों से युक्त तथा गुणोपेत शब्दार्थ समुदाय ही काव्य होता ऐसा कहते हैं।–

अदोषौ तद्धि शब्दार्थौ सालङ्कारौ गुणान्वितौ।
काव्यमेतदिति प्राहुरलङ्कार विशारदाः।। [15]

मम्मटादि आचार्यों के उपर्युक्त काव्य लक्षण पर कुछ आचार्यों ने आक्षेप करते हुए प्रश्न किया है कि– 'काव्यत्व' दण्डत्वादि की तरह क्या प्रत्येक परिसमाप्यवृत्ति है अथवा द्वित्व या पृथकत्व की तरह व्यासज्यवृत्ति है? [16] विश्वनाथदेव के अनुसार उपर्युक्त दोनों में से प्रथम मत इसलिए अनुचित है, क्योंकि काव्यत्त्व का व्यवहार, केवल शब्द में या केवल अर्थ में, अलग–अलग रूप में नहीं होता। अर्थात् एक ही पद्य के लिए यह शब्दकाव्य भी है और अर्थकाव्य भी, इस तरह का व्यवहार नहीं होता। और दूसरा (व्यासज्यवृत्ति वाला) मत भी अनुचित है। क्योंकि जैसे 'देवदत्तः प्रभवः' इस वाक्य में 'देदत्त प्रभवत्व' धर्म संकर दोष से दूषित होने के कारण अवच्छेदक नहीं बन पाता उसी प्रकार शब्दार्थकाव्यत्व भी संकर दोष के कारण शब्दार्थ समष्टि रूप काव्य का अवच्छेदक धर्म नहीं बन पाता। [17]

'शब्दः काव्यम्' अथवा 'शब्दार्थौ काव्यम्' के विवाद में शब्द–काव्यतावाद के पक्ष में एक अन्य युक्ति देते हुए विश्वनाथदेव का कहना है कि शब्दार्थौ पद–समूह में शब्द के पूर्वप्रयोग से शब्दगत उत्कृष्टता को दिखलाते हुए (भामह–मम्मटादि) आचार्यों ने काव्य में शब्द की ही काव्यता को व्यंजनया प्रकट किया। [18] और यही बात 'काव्य' शब्द की व्युत्पत्ति 'कवेः कर्म काव्यम्' से भी पुष्ट होती है। तात्पर्य यह है कि 'काव्य', कवि सम्पाद्य वस्तु है, और रमणी, चन्द्रमा, चाँदनी आदि अर्थ ब्रह्मा के निर्माण के विषय हैं न कि कवि के। अतः काव्य–पद की समाख्या एवं काव्य पढ़ता है, काव्य सुनता है इत्यादि व्यवहार से काव्य शब्दगत ही सिद्ध होता है।

शब्द–काव्यतावाद का युक्तिपूर्वक प्रतिपादन करने के उपरान्त विश्वनाथदेव ने चण्डीदास के काव्यलक्षण का खण्डन करते हुए शब्दार्थकाव्यतावाद के पक्ष में भी कुछ युक्तियाँ प्रस्तुत किया है। चण्डीदास के अनुसार– रसोद्बोधक पद समूह काव्य कहलाता है। इस पर विश्वनाथदेव प्रश्न करते हैं कि, क्या आस्वादयुक्त अर्थ के बोधक पद काव्य कहलाते हैं? या फिर, पदों से उपस्थापित आस्वादयुक्त अर्थ काव्य कहलाते हैं? उपर्युक्त दोनों लक्षणों में से किसी एक के अनुकूल एकतरपक्षपातिनी युक्ति न होने से दोनों में काव्य का लक्षण घटित हो जाता है। [19] तात्पर्य यह है कि आस्वादयुक्त अर्थ के बोधक पद एवं पदों से उपस्थापित आस्वादयुक्त अर्थ दोनों मिलकर काव्य कहलाते हैं। इसके अतिरिक्त 'कवेः कर्म काव्यम्' यह समाख्या भी शब्द में काव्यत्व की विनिगमिका युक्ति नहीं है। क्योंकि 'कामिनी–मुख का चन्द्र के साथ तादात्म्य रूप अलौकिक अर्थ भी कवि निर्वाह्य होता है। अतः शब्द के सदृश अर्थ के भी कवि–निर्वाह्य होने से 'पदसन्दर्भः काव्यम्' इत्यादि लक्षण उचित नहीं है। [20] अर्थात् शब्द एवं अर्थ दोनों काव्य माने जा सकते हैं। विश्वनाथदेव ने काव्यत्व को जाति न मानकर अखण्डोपाधि स्वीकार किया है। और इसी आधार पर ही उन्होंने शब्दार्थयुगल को काव्य मानते हुए उसमें साङ्कर्य की शङ्का का निराकरण किया है।

विश्वनाथदेव ने मम्मट के काव्यलक्षण में आये विशेषणभूत अदोषौ, सगुणौ आदि पदों की भी आलोचना साहित्यदर्पणकार के तर्कों के माध्यम से किया है। इस विषय पर विश्वनाथदेव ने काव्य के लक्षण में अदोषौ का तात्पर्य दोष सामान्य का अभाव अथवा दोष विशेष का अभाव इन दोनों को नहीं स्वीकार किया। इसका कारण यह है कि रस, अर्थ, वाक्य, पद, वर्ण एवं रचना इन सभी में पाये जाने वाले अनन्त दोष होते हैं। अतः यदि दोष–सामान्याभाव माना जायेगा तो काव्यत्व को निराश्रयता प्राप्त होगी। [21] और यदि दोष विशेष का अभाव माने तो उसके सर्वत्र सरलता से (सदोष एवं निर्दोष दोनों) उपलब्ध होने के कारण वह (दोष विशेष) काव्य का अवच्छेदक धर्म नहीं बन पायेगा और व्यर्थ के विशेषण का दोष ही सिद्ध होता है। [22]

विश्वनाथदेव का मानना है कि प्रतिभाशाली कवियों का कोई ऐसा प्रकार (लोकोत्तरवर्णनानिपुणत्व) है जो सामाजिकों को चित्रलिखित सा करके उन्हें दोष ग्रहण करने में असमर्थ बना देता है– अतएवास्ति कश्चित् प्रतिभावतां विशेषोपायः सामाजिकांश्चित्रार्पितानिवकृत्वा दोषान्न ग्राह्यतीति वदन्ति। [23]

सगुणौ पद की आलोचना में विश्वनाथदेव ने साहित्यदर्पणकार की युक्ति का प्रयोग करते हुए लिखा है कि यह विशेषण भी निरर्थक है। क्योंकि गुण तो केवल रस में रहते हैं न कि काव्य के शरीरभूत शब्दार्थ में।

उपर्युक्त विस्तृत खण्डन–मण्डनात्मक काव्यस्वरूप समीक्षा के बाद विश्वनाथदेव ने भोजराज के काव्यलक्षण से सहमति प्रकट करते हुए नव्यन्याय शैली में स्वामिभत परिनिष्ठित काव्य लक्षण को इस प्रकार प्रस्तुत किया है– 'वस्तुतस्तु अदोषं गुणवत्काव्यमित्यादिवाक्यप्रतिपादितस्वर्गविशेषजनकतावच्छेदकं काव्यत्वमखण्डं कल्पनीयं तथा च तदेव लक्षणमस्तु किमनेनानुगतेन लक्षणेन इति सर्वं सुस्थम्। अर्थात् 'अदोषं गुणवत्काव्यमलंकारैरलङ्कृतम्' इत्यादि भोजराज के वाक्य द्वारा बतलाये गये स्वर्ग विशेष (अथवा विशेष प्रकार के स्वर्गीय आनन्दोपम सुखविशेष) के जनक, काव्य में रहने वाली काव्यता के अवच्छेदक अखण्डधर्म काव्यत्व की कल्पना करनी चाहिए और यही काव्य का लक्षण स्थिर होता है। 'तददोषौ' इत्यादि अथवा 'पदसन्दर्भः काव्यम्' इत्यादि को काव्य लक्षण मानने की कोई आवश्यकता नहीं है। तात्पर्य यह है कि स्वर्गीय आनन्दोपम लोकोत्तर सुख–विशेष का जनक अखण्डार्थबोधक अखण्डवाक्य ही काव्य है।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि विश्वनाथदेव ने विलक्षण शैली में प्रथमतः अलौकिक आन्दोत्पादक वाक्य को काव्य प्रतिपादित किया है। तदुपरान्त मम्मट के काव्यलक्षण की प्रतिपद आलोचना करते हुए काव्य में शब्द की प्रधानता प्रतिपादित किया। पुनः काव्यत्व को जाति न मानकर अखण्डोपाधि मानते हुए मम्मट के 'शब्दार्थौ काव्यम्' सिद्धान्त में उपस्थित होने वाले सङ्कर दोष का परिहार किया है। और अन्ततः नव्य न्याय की शैली में लोकोत्तर आनन्द के जनक तथा अखण्डार्थ के बोधक अखण्डवाक्य को काव्य प्रतिपादित किया है। संभवतः पण्डितराज जगन्नाथ ने काव्यलक्षण एवं रस आदि से सम्बन्धित सिद्धान्तों की प्रेरणा साहित्यसुधासिन्धु से ही ग्रहण किया है।

संदर्भ

1. साहित्यसुधासिन्धु, 8.294 (पृ0–548)
2. वही, 8.285–86
3. वही, पृ0–86
4. काव्यप्रकाश, पृ0–10
5. काव्यालङ्कार (भामह), 1.16
6. काव्यप्रकाश, सूत्र–1
7. सा0द0, पृ0–23
8. रसगङ्गाधर, पृ0–10
9. इत्थं चमत्कारजनकभावनाविषयार्थ प्रतिपादकशब्दत्वम्....। वही, पृ0–13
10. यत्प्रतिपादितार्थविषयक भावनात्वं चमत्कार जनकतावच्छेदकं तत्त्वम्। वही, पृ0–13
11. वही, पृ0–13
12. साहित्यसुधासिन्धु, 1.4
13. केचित्तु आस्वादव्यंजकत्त्वमेवकाव्यप्रयोजकम्। तत्तु शब्दे चार्थे चाविशिष्टमिति शब्दवदर्थेऽपि काव्यत्वमिति प्राहुः। वही, पृ0–7
14. काव्यं करोतीत्यादिव्यवहारस्तु शब्दपरतयानेयः। वही, पृ0–7
15. वही, पृ0–8
16. अत्र वदन्ति, काव्यत्वं दण्डत्वादिवत् प्रत्येकं परिसमाप्यवृत्ति उत् द्वित्त्वपृथक्त्ववद् व्यासज्यवृत्ति वा। वही, पृ0–8
17. नाद्यः, केवले शब्दे केवलार्थे च तदव्यवहारात्। नापरः, देवदत्त प्रभवत्वादि न जातिः सांकर्यापत्या तादृशजात्यनंगीकारात्। वही, पृ0–9
18. (क) वस्तुतस्तु प्राङ्निपातेनाभ्यर्हितत्त्वं दर्शयता शब्दस्यैव काव्यत्वमिति ध्वनितम्। वही, पृ0–12
    (ख) शब्दार्थावित्यत्रार्थाश्रयत्वाच्छब्दस्य प्रागुक्तिः। बा0बो0 टीका, पृ0–14
19. तेनास्वादजीवातुः पद सन्दर्भः काव्यमिति.... विनिगमनाविरहेणोभयस्य काव्यत्वात्। वही, पृ0–13
20. न च समाख्या विनिगमिका .....कविनिर्वाह्यत्वेनातत्रैव। वही, पृ0–13
21. वही, पृ0–11
22. वही, पृ0–11
23. वही, पृ0–15